



भारतीय राजनीति में दलित अभिजनों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० अरुण कुमार, असि० प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान

राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी, उ०प्र०

Email- arunkumarprajapati9@gmail.com

Mob.No. - 7007600472

शोध सारांशः— भारतीय समाज की सामाजिक संरचना ऐतिहासिक रूप से जाति व्यवस्था पर आधारित रही है, जिसमें दलित समुदाय को लंबे समय तक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से वंचित रखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने समानता, सामाजिक न्याय और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए दलित समुदाय को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक ऐसे शिक्षित, संगठित और राजनीतिक रूप से जागरूक वर्ग का उदय हुआ, जिसे “दलित अभिजन” कहा जाता है। भीमराव रामजी अम्बेडकर ने दलित राजनीति को वैचारिक आधार प्रदान करते हुए शिक्षा, संगठन और संघर्ष को दलित मुक्ति का प्रमुख साधन माना। उनके नेतृत्व में दलित समुदाय को राजनीतिक अधिकारों और संवैधानिक सुरक्षा का आधार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त काशीराम तथा मायावती जैसे नेताओं ने दलित राजनीति को संगठित स्वरूप प्रदान करते हुए उसे सत्ता की मुख्यधारा तक पहुंचाया। आरक्षण नीति, शिक्षा का प्रसार तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं के विस्तार ने दलित अभिजन वर्ग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस वर्ग ने संसद, विधानसभाओं, प्रशासनिक सेवाओं तथा सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से दलित समुदाय के अधिकारों की रक्षा करने और सामाजिक न्याय की मांग को राष्ट्रीय राजनीति का महत्वपूर्ण मुद्दा बनाने का कार्य किया। दलित अभिजनों ने केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व ही नहीं बढ़ाया, बल्कि दलित अस्मिता, आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना को भी मजबूत किया। प्रस्तुत शोध लेख भारतीय राजनीति में दलित अभिजनों की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि उन्होंने भारतीय लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और दलित चेतना के विकास में किस प्रकार योगदान दिया है।

मुख्य शब्दः—जाति व्यवस्था, अनुसूचित जाति, दलित, अभिजन, अधिकार, स्वतंत्रता, समानता, संवैधानिक प्रावधान।

प्रस्तावनाः— भारतीय समाज की सामाजिक संरचना सदियों से जाति व्यवस्था पर आधारित रही है, जिसमें समाज को विभिन्न वर्गों और जातियों में विभाजित किया गया। इस व्यवस्था में दलित समुदाय को सबसे निचले स्तर पर रखा गया तथा उन्हें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकारों से लंबे समय तक वंचित रखा गया। छुआछूत, सामाजिक बहिष्कार, शैक्षिक असमानता और आर्थिक शोषण जैसी समस्याओं ने दलित समुदाय के विकास को गंभीर रूप से प्रभावित किया। परंतु आधुनिक भारत में लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा संवैधानिक प्रावधानों के परिणामस्वरूप दलित समुदाय के भीतर एक ऐसे शिक्षित, जागरूक और प्रभावशाली वर्ग का उदय हुआ, जिसे ‘दलित अभिजन’ कहा जाता है। दलित अभिजन से आशय उस वर्ग से है, जिसने शिक्षा, प्रशासन, राजनीति, साहित्य, सामाजिक आंदोलनों तथा आर्थिक क्षेत्र में विशेष उपलब्धियां प्राप्त कर सामाजिक प्रभाव स्थापित किया। यह वर्ग केवल व्यक्तिगत उन्नति तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने दलित समाज के अधिकारों, सम्मान और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए संघर्ष किया। भारतीय लोकतंत्र में दलित अभिजनों का उदय सामाजिक परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनों ने दलित चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ज्योतिराव फुले ने जातिगत शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई तथा शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का माध्यम माना। इसी प्रकार सावित्रीबाई फुले ने दलित और महिला शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। बाद में भीमराव रामजी अम्बेडकर ने दलित आंदोलन को वैचारिक और राजनीतिक

आधार प्रदान किया। उन्होंने दलित समुदाय को 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो' का संदेश देते हुए सामाजिक न्याय और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को दलित मुक्ति का मुख्य साधन माना। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने दलित समुदाय को समानता, स्वतंत्रता और न्याय के अधिकार प्रदान किए। संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध कानूनी सुरक्षा की व्यवस्था की गई। इन संवैधानिक प्रावधानों ने दलित समुदाय के भीतर शिक्षा और सरकारी सेवाओं में अवसरों का विस्तार किया, जिसके परिणामस्वरूप एक नया दलित मध्यवर्ग और अभिजन वर्ग विकसित हुआ। यह वर्ग राजनीति, प्रशासन, शिक्षा और सामाजिक आंदोलनों में सक्रिय होकर दलित समाज की आवाज बना। भारतीय राजनीति में दलित अभिजनों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने दलित समुदाय को केवल एक 'वोट बैंक' के रूप में न रहने देकर उसे सत्ता और नीति निर्माण की प्रक्रिया में सहभागी बनाने का प्रयास किया। कांशीराम ने बहुजन राजनीति की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए दलितों और वंचित वर्गों को संगठित किया, जबकि मायावती का राजनीतिक उदय दलित सशक्तिकरण का प्रतीक माना जाता है। इसके अतिरिक्त दलित साहित्य, सामाजिक आंदोलनों और छात्र संगठनों ने भी दलित अस्मिता और आत्मसम्मान को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हालांकि, दलित अभिजनों की भूमिका को लेकर विभिन्न प्रकार की बहसों भी सामने आती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि दलित अभिजन वर्ग ने दलित समाज को राजनीतिक चेतना और प्रतिनिधित्व प्रदान किया, जबकि अन्य विचारकों के अनुसार यह वर्ग धीरे-धीरे सत्ता और विशेषाधिकारों तक सीमित होता जा रहा है। कई बार यह आरोप लगाया जाता है कि दलित अभिजन केवल शिक्षित और शहरी दलितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि ग्रामीण और गरीब दलितों की समस्याएं अपेक्षाकृत उपेक्षित रह जाती हैं। इन सभी संदर्भों में दलित अभिजनों की भूमिका का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। यह अध्ययन केवल दलित राजनीति को समझने का माध्यम नहीं है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की प्रक्रिया का भी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। दलित अभिजन भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरे हैं। अतः उनकी भूमिका का विश्लेषण भारतीय राजनीति और समाज की व्यापक समझ के लिए अत्यंत आवश्यक है।

दलित अभिजन:- अवधारणा और स्वरूप- 'अभिजन' शब्द सामान्यतः उस वर्ग के लिए प्रयोग किया जाता है, जो समाज में शक्ति, संसाधन, शिक्षा और प्रभाव के कारण विशेष स्थान रखता है। दलित अभिजन का अर्थ ऐसे दलित वर्ग से है, जिसने शिक्षा, राजनीति, प्रशासन, व्यवसाय या सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रभाव प्राप्त किया हो। दलित अभिजन मुख्यतः तीन आधारों पर विकसित हुए—

- शिक्षा का प्रसार
- संवैधानिक अधिकार और आरक्षण व्यवस्था
- राजनीतिक चेतना और सामाजिक आंदोलन

स्वतंत्रता के बाद आरक्षण नीति ने दलित समुदाय के एक हिस्से को शिक्षा और सरकारी नौकरियों तक पहुंच प्रदान की। इससे एक ऐसा मध्यवर्ग विकसित हुआ, जिसने दलित राजनीति को संगठित स्वरूप प्रदान किया। यह वर्ग केवल सामाजिक न्याय की मांग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सत्ता में भागीदारी और नीति निर्माण में भी सक्रिय हुआ।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि — भारतीय राजनीति में दलित चेतना का विकास सामाजिक सुधार आंदोलनों से जुड़ा हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योतिराव फुले ने जाति आधारित शोषण का विरोध किया तथा शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम माना। सावित्रीबाई फुले ने दलित और महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया। बीसवीं शताब्दी में भीमराव रामजी अम्बेडकर ने दलित आंदोलन को वैचारिक और राजनीतिक आधार प्रदान किया। उन्होंने दलितों को 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो' का संदेश दिया। अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचिका, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक समानता की मांग की। पूना पैक्ट भारतीय राजनीति में दलित प्रतिनिधित्व का महत्वपूर्ण मोड़ था। यद्यपि पृथक निर्वाचिका की मांग पूरी नहीं हुई, लेकिन अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था की गई। इससे दलित नेतृत्व को राजनीतिक मंच प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने अनुसूचित जातियों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शिक्षा और नौकरियों में आरक्षण तथा सामाजिक भेदभाव से सुरक्षा प्रदान की। यही वह आधार था, जिससे दलित अभिजन वर्ग का उदय संभव हुआ।

भारतीय राजनीति में दलित अभिजनों की भूमिका:-

1. सामाजिक न्याय की राजनीति को मजबूत करना— दलित अभिजनों ने भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय को केंद्रीय मुद्दा बनाया। उन्होंने जाति आधारित असमानता, छुआछूत और सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष किया। कांशीराम ने 'बहुजन राजनीति' की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को राजनीतिक रूप से संगठित करने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में स्थापित बहुजन समाज पार्टी ने दलित राजनीति को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। दलित अभिजनों ने यह स्थापित किया कि लोकतंत्र तभी सार्थक होगा, जब समाज के सबसे कमजोर वर्गों को समान अवसर प्राप्त हों।

2. राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देना— दलित अभिजनों ने दलित समुदाय को राजनीति में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया। संसद और विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों ने दलित नेतृत्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज भारत में अनेक दलित नेता राष्ट्रीय राजनीति में प्रभावशाली भूमिका निभा रहे हैं। मायावती का उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनना भारतीय राजनीति में दलित सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। उनका राजनीतिक उदय इस बात का प्रतीक है कि दलित समुदाय अब केवल वोट बैंक नहीं, बल्कि सत्ता का भागीदार भी बन सकता है। दलित अभिजनों ने पंचायत स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा दिया। इससे लोकतंत्र की समावेशी प्रकृति मजबूत हुई।

3. दलित पहचान और अस्मिता का विकास— दलित राजनीति केवल सत्ता प्राप्ति का माध्यम नहीं रही, बल्कि यह आत्मसम्मान और पहचान का आंदोलन भी रही है। दलित अभिजनों ने दलित समुदाय में सामाजिक चेतना और आत्मगौरव की भावना उत्पन्न की। अम्बेडकरवादी विचारधारा ने दलितों को यह विश्वास दिलाया कि वे समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार रखते हैं। 'जय भीम' जैसे नारों और दलित साहित्य, कला तथा सांस्कृतिक आंदोलनों ने दलित अस्मिता को मजबूत किया। ददपीपसंजपवद विल्जम जैसी रचनाओं ने जाति व्यवस्था की आलोचना करते हुए सामाजिक समानता की मांग को वैचारिक आधार प्रदान किया।

4. लोकतंत्र को समावेशी बनाना— दलित अभिजनों ने भारतीय लोकतंत्र को केवल औपचारिक व्यवस्था न रहने देकर उसे सामाजिक न्याय से जोड़ने का कार्य किया। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि राजनीतिक समानता तब तक अधूरी है, जब तक सामाजिक और आर्थिक समानता स्थापित नहीं होती। दलित नेताओं के उदय ने भारतीय राजनीति में हाशिए के समुदायों की आवाज को मुख्यधारा तक पहुंचाया। इससे लोकतंत्र की भागीदारी बढ़ी और नीति निर्माण में सामाजिक विविधता को स्थान मिला।

5. सामाजिक आंदोलनों का नेतृत्व— दलित अभिजनों ने अनेक सामाजिक आंदोलनों का नेतृत्व किया, जिनका उद्देश्य सामाजिक भेदभाव और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना था। दलित पैथर्स ने महाराष्ट्र में दलित उत्पीड़न के खिलाफ सशक्त आंदोलन चलाया। इसी प्रकार विभिन्न छात्र संगठनों और सामाजिक आंदोलनों ने शिक्षा, रोजगार और मानवाधिकारों के प्रश्नों को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया। इन आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया कि दलित राजनीति केवल चुनावी राजनीति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का व्यापक आंदोलन है।

दलित अभिजनों की राजनीति की सीमाएं— यद्यपि दलित अभिजनों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, फिर भी उनकी राजनीति की कुछ सीमाएं और आलोचनाएं भी सामने आती हैं -

1. प्रतिनिधित्व का संकट— अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि दलित अभिजन केवल शिक्षित और आर्थिक रूप से सक्षम दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि ग्रामीण और अत्यंत गरीब दलितों की समस्याएं पीछे छूट जाती हैं। राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के बाद कई दलित नेता आम दलित जनता से दूर हो गए। इससे दलित राजनीति में वर्गीय विभाजन की स्थिति उत्पन्न हुई।

2. पहचान की राजनीति का प्रभाव— दलित राजनीति में पहचान आधारित राजनीति का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। कई बार यह राजनीति सामाजिक न्याय की बजाय जातीय ध्रुवीकरण तक सीमित हो जाती है। राजनीतिक दल अक्सर दलित समुदाय को वोट बैंक के रूप में प्रयोग करते हैं। इससे वास्तविक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कमजोर पड़ जाती है।

3. सामाजिक परिवर्तन की सीमित गति— संवैधानिक प्रावधानों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बावजूद आज भी दलित समुदाय सामाजिक भेदभाव और हिंसा का सामना कर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में जातिगत उत्पीड़न, भूमि विवाद और सामाजिक बहिष्कार जैसी समस्याएं अभी भी विद्यमान हैं। इससे स्पष्ट होता है कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व मात्र से सामाजिक समानता स्थापित नहीं हो सकती।

4. दलित राजनीति का विखंडन— दलित राजनीति विभिन्न उपजातियों, क्षेत्रीय हितों और राजनीतिक दलों में विभाजित दिखाई देती है। इससे दलित आंदोलन की एकता कमजोर होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि दलित राजनीति अब वैचारिक संघर्ष की बजाय सत्ता की राजनीति तक सीमित होती जा रही है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में दलित अभिजन— वैश्वीकरण, शिक्षा और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने दलित अभिजनों की भूमिका को नया आयाम दिया है। आज सोशल मीडिया, साहित्य और अकादमिक विमर्श के माध्यम से दलित प्रश्नों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उठाया जा रहा है। रोहित वेमुला की घटना ने शिक्षा संस्थानों में सामाजिक भेदभाव के प्रश्न को राष्ट्रीय बहस का विषय बनाया। इसी प्रकार नई पीढ़ी के दलित बुद्धिजीवी सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्ष में सक्रिय हैं। समकालीन दलित राजनीति अब केवल आरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि भूमि सुधार, शिक्षा, स्वास्थ्य, डिजिटल समानता और मानव गरिमा जैसे व्यापक मुद्दों को भी शामिल कर रही है।

दलित अभिजनों की भूमिका का विश्लेषण— भारतीय राजनीति में दलित अभिजनों की भूमिका का विश्लेषण करते समय यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने लोकतंत्र को अधिक प्रतिनिधिक और समावेशी बनाया है। उन्होंने दलित समुदाय को राजनीतिक चेतना प्रदान की तथा सामाजिक न्याय को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया। राजनीतिक स्तर पर दलित अभिजनों ने दलित समुदाय को केवल 'वोट बैंक' न रहने देकर सत्ता में भागीदारी का अवसर प्रदान किया। कांशीराम और मायावती जैसे नेताओं ने दलित राजनीति को संगठित रूप देकर सामाजिक न्याय की राजनीति को मजबूत किया। दलित अभिजनों ने दलित अस्मिता, आत्मसम्मान और अधिकार चेतना को विकसित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि, दलित अभिजनों की भूमिका की कुछ सीमाएं भी हैं। कई बार यह वर्ग सामान्य दलित जनता से दूर होता दिखाई देता है और उसकी राजनीति सत्ता एवं पहचान तक सीमित रह जाती है। ग्रामीण और गरीब दलितों की समस्याएं अपेक्षाकृत कम प्रतिनिधित्व प्राप्त कर पाती हैं। इसके अतिरिक्त, जातीय ध्रुवीकरण और राजनीतिक स्वार्थ भी दलित राजनीति की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं। हालांकि, यह भी सत्य है कि दलित राजनीति को अभी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। दलित अभिजनों को केवल सत्ता प्राप्ति तक सीमित न रहकर समाज के सबसे कमजोर वर्गों के वास्तविक विकास के लिए कार्य करना होगा। सामाजिक न्याय की राजनीति तभी सफल मानी जाएगी, जब दलित समुदाय के सभी वर्गों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सम्मानजनक जीवन के अवसर प्राप्त होंगे। फिर भी, समग्र रूप से देखा जाए तो दलित अभिजनों ने सामाजिक न्याय, समानता और प्रतिनिधित्व के प्रश्नों को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में स्थापित किया तथा दलित समुदाय को सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में अग्रसर किया।

निष्कर्ष— निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति में दलित अभिजनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी रही है। उन्होंने सदियों से वंचित समुदाय को राजनीतिक प्रतिनिधित्व, सामाजिक सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक किया। भीमराव रामजी अम्बेडकर से लेकर समकालीन दलित नेताओं तक, दलित अभिजनों ने भारतीय लोकतंत्र को सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। दलित राजनीति ने यह सिद्ध किया कि लोकतंत्र केवल चुनावी प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी है। दलित अभिजनों ने समाज के हाशिए पर स्थित लोगों को आवाज दी तथा उन्हें राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सहभागी बनाया। फिर भी यह आवश्यक है कि दलित राजनीति केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व तक सीमित न रहे। इसे सामाजिक और आर्थिक न्याय के व्यापक कार्यक्रम से जोड़ना होगा। दलित अभिजनों को अपने समुदाय के गरीब, ग्रामीण और वंचित वर्गों की समस्याओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए। आज भारतीय समाज एक ऐसे दौर से गुजर रहा है, जहां समानता, सामाजिक न्याय और मानवाधिकार की अवधारणाएं अधिक महत्वपूर्ण हो गई हैं। ऐसे में दलित अभिजनों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि वे समावेशी विकास, लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक परिवर्तन के प्रति प्रतिबद्ध रहते हैं, तो भारतीय लोकतंत्र अधिक मजबूत और न्यायपूर्ण बन सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कैथरीन, एस0 (2017), "जाति एवं आर्थिक भेदभाव : कारण, परिणाम एवं निदान" इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली खण्ड-12, अंक-41.
2. बेते, आर्नै (2018), "जाति, वर्ग और शक्ति" कैलिफोर्निया प्रेस विश्वविद्यालय, बर्कले।

3. सिंह, मुकेश (2019), "डॉ० भीमराव अम्बेडकर" वन्दना पब्लिकेशन्स, प्रयागराज।
4. सिंह, योगेन्द्र (2019), "भारत में सामाजिक परिवर्तन : संकट एवं समुत्थानपरक" जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
5. सिंह, डॉ० रामगोपाल (2020), "सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
6. मिश्र, रमानाथ (2020), "प्राचीन भारतीय समाज" मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
7. गौतम, रूपचन्द्र (2020), "आजाद भारत में दलित" स्वारांजली पब्लिकेशन्स, कानपुर।
8. कुमार, प्रवेश (2021), "दलित अस्मिता की राजनीति" अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
9. सिंह, डॉ० अनुराधा (2021), "अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों के सामाजिक आयाम" हर्षवर्धन पब्लिकेशन प्रा० लि० महाराष्ट्र।
10. दुबे, श्यामाचरण (2021), "भारतीय समाज" नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली।
11. शाह, घनश्याम (2022), "भारत में जाति और लोकतांत्रिक राजनीति" परमानेन्ट ब्लैक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
12. दुबे, अभय कुमार (2023), "आधुनिकता के आइने में दलित" वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
13. थोरात, सुखदेव (2023), "भारत में दलित : एक समान नियति की तलाश" सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
13. सिंह, आर०जी० (2024), "भारतीय दलितों की समस्याएँ एवं समाधान" मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
14. भारती, कवेल (2024), "दलित विमर्श की भूमिका" इतिहास बोध प्रकाशन, प्रयागराज।